पर्याय

मैं कब कहता हूं,

प्रभू मेरी अंतरात्मा को धो दो!

जानता हूं मैं,

शुद्धता की अवधारणा झूठ है

तुम्हारी तरह।

जनेऊधारी शरीर में कहीं

शाहजहां, मीर कासिम, गोरी का

खून तो नहीं?

अल्पसंख्यकों तुम्हारी विरासत

सम्राटों का हरम तो नहीं?

हाड़-मांस की काया में

आत्मा ढूंढता हूं मैं

ईशा-अल्लाह में नहीं

फुटपाथों, जंगलों में,

झोपड़ियों, महलों में,

इंसानियत खोजता हूं मैं ।

मंदिर, मस्जिद, गिरिजा, गुरुद्वारे में

तुमने ही तो बांटा हमें,

आततायी, अमानवीय, साम्प्रदायिक,

मैं क्या नाम दूं तुम्हारा?

समझता हूं, सोचता भी हूं

प्रत्येक आदमी तो व्यक्ति होता है।

लेकिन व्यक्ति होकर भी,

वह स्वयं में,

राम, जॉन,हमीद भर ही तो नहीं होता ।

परिवार, समाज,राष्ट्र;

जो वह होता है,

उसे पता भी नहीं होता।

लेकिन वह जानता है कि-

वह हिन्दू है या मुसलमान।

रक्त में दीमक बनकर

इंसानियत चाटने वाले हे ईश्वर!

मैं तुम्हें नहीं कर सकता क्षमा,

ना ही चाहता हूं ढूंढना,

कोई ऐसा शब्द जो-

पर्याय या-

विकल्प बने तुम्हारा ।

प्रो. कंचन शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
काँचीपुर, इंफाल (मणिपुर)
एवं
आईसीसीआर हिंदी पीठ,
भारत विद्या विभाग,
सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया